P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.- V, ISSUE-I,August-2016
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

महाभारत : लोककल्याण का दर्शन–ग्रन्थ

मनीष पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
जवाहरलाल नेहरू मेमो0 पी0 जी0 कॉलेज, बाराबंकी
उ0प्र0

सारांश

महाभारत, भारत के धर्म तथा तत्व ज्ञान का विश्वकोष है। धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है और इसीलिए महर्षि वेदव्यास ने अधर्म से देश का नाश तथा धर्म से राष्ट्र के अभ्युत्थान की चर्चा करते हुये लोक–कल्याण के दृष्टिगत एक विशेष आदर्श के अनुसार जीवनयापन के दार्शनिक मूल्यों का उल्लेख किया है। व्यक्तिगत जीवन आत्मकल्याण के साथ–साथ लोक कल्याण का भी विधायक हो, तभी विश्वकल्याण सम्भव है। नियमित तथा सुखद जीवन प्रत्येक लक्ष्य का साधक है। मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रियनिग्रह से ही सम्भव है। क्योंकि इसके अभाव में इन्द्रियों का दासत्व व्यक्ति को मनुष्यत्व से दूर ले जाता है।

मुख्य शब्दः महाभारत, लोक–कल्याण, दर्शन, कर्म, अध्यात्म।

प्रस्तावना

महाभारत भारतीय ज्ञान का 'विश्वकोश' है। इसके पृष्ठों को उलटते ही प्राचीन भारतीय समाज, धर्म, दर्शन, विश्वास, परम्परा तथा धारणाओं का चित्र समक्ष उपस्थित हो जाता है। दीर्घकालिक अवधि में प्राचीन भारतीय संस्कृति ने जितने आयामों में विस्तार पाया है, उन सबका अधिकतम समावेश महाभारत में हुआ है। यही कारण है कि इस महाग्रन्थ के अध्येताओं ने यह उक्ति प्रचलित की – **''यन्न भारते तन्न भारते।''** इस ग्रन्थ के रचयिता महर्षि वेदव्यास को भी ग्रन्थ के विषयवैविध्य पर पूर्ण विश्वास था, अतः उन्होंने घोषणा की कि

''धर्मे ह्यर्थे कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।''

महाभारत अनेक शताब्दियों के साहित्यिक प्रयासों का फल है। शनैः शनैः अपने सूक्ष्म कलेवर से बढ़ता हुआ वह लक्षश्लोकात्मक विशालकाय ग्रन्थ के रूप में परिणत होता है, जिसमें एक अर्थपूर्ण कथा है, जो आद्योपान्त भारतीय जीवन और संस्कृति के केन्द्रीय विचारों और आदर्शों का प्रतिनिधित्व करती है। हाँ, महाभारत केवल भरतवंशियों की कथा ही नहीं है अपितु यह एक वृहद् स्तर पर भारत की अन्तरात्मा का, उसके धार्मिक एवं नैतिक मन का, लोक कल्याण का, सामाजिक तथा राजनीतिक आदर्शों, संस्कृति एवं जीवन का महाकाव्य है।

अध्ययन का उद्देश्य

व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं, क्योंकि व्यक्ति समाज का अंग है और व्यक्ति के जीवन का भी एक सामाजिक पक्ष है। समाज रचना उसी प्रकार की होनी चहिए जिसमें व्यक्ति के स्वार्थों में परस्पर संघर्ष न हो और वह आत्मकल्याण द्वारा क्रमशः परिवार, समाज, देश तथा विश्व–कल्याण के सम्पादनार्थ समर्थ हो सके। इन उदात्त तत्त्वों पर आधारित लोक को, राजा और राजकीय योजनाओं की कितनी अपेक्षा होती है इसका निर्णय किसी काल विशेष के समाज विशेष का अवलोकन करने के अनन्तर ही ज्ञात हो सकता है। महाभारत में विभिन्न सामाजिक, धार्मिक तथा दार्शनिक मूलभूत प्रवृत्तियों का सन्दर्भ प्राप्त होता है, जिसमें लोककल्याण को ध्यान में रखकर ही एक विशेष आदर्श के अनुसार व्यक्ति को अपना जीवन व्यतीत करना था। यही कारण है कि तात्कालिक समाज ने ऐसे व्यक्तिगत जीवन को प्रशस्त स्वीकृत किया था, जो दूसरों के लिए हो

यमाजीवन्ति पुरुषं सर्वभूतानि संजय।
पक्वं द्रुममिवासाद्य तस्य जीवितमर्थवत्।। उद्योग0, 131/40

इस लोक को 'कर्मभूमि' तथा मानव को 'कर्मलक्षण' मानकर उपनिषदों की मूल भावना का सम्मान करते हुए द्वैपायन व्यास ने भी इस जीवन को बहुत कुछ समझा था, क्योंकि इसे प्राप्त कर शुभ कर्म किये जा सकते हैं और अशुभ कर्मों से मुक्ति मिल सकती है। वास्तव में

यत्तु दानपतिं शूरं क्षुधिता पृथिवीचराः।
प्राप्य तृप्ताः प्रतिष्ठन्ते धर्मः कोऽभ्यधिकस्ततः।।
उद्योग0, 137/26

अतः महाभारतकार ने इस दुर्लभ जीवन को सार्थक करने के लिए किसी भी प्राणी की हिंसा न करने, सभी से मैत्रीभाव रखने और किसी भी प्रकार से वैर न करने का आदर्श उपस्थित किया।[1] यह आदर्श मानवमात्र के लिये था न कि किसी वर्ग, वर्ण अथवा व्यक्ति विशेष के लिये। इन आदर्शों से समन्वित व्यक्तिगत जीवन आत्म–कल्याण के साथ लोककल्याण का भी विधायक था।

परिकल्पना

महाभारतकाल में राजाओं के मध्य बढ़ती साम्राज्यैषणा ने अशान्ति को जन्म दिया, फलतः सर्वकल्याण के लिये आध्यात्मिक उत्थान की आवश्यकता थी जो वस्तुतः दर्शन का प्रतिफल है। ऐसे परम तत्त्व अथवा रहस्य का ज्ञान कराने वाली विद्या को, जिससे मनुष्य जन्म–मृत्यु के चक्र से, दुःखों से सर्वथा मुक्त हो सकता है, दर्शन कहते हैं। दर्शन कोई बौद्धिक व्यायाम नहीं वरन् जीवन–यापन का अन्यतम साधन है, लोक कल्याण का उपकरण है, जिसके अनेकानेक सन्दर्भ महाभारत मे यत्र–तत्र प्राप्त होते हैं। दर्शन की विविध प्रवृत्तियों के विभिन्न सन्दर्भों की महाभारत में उपलब्धता उसे तत्त्वज्ञान के विश्वकोष की प्रतिष्ठा प्रदान करती है। महाभारत में चार्वाक,[2] सांख्य–योग,[3] पांचरात्र[4] आदि विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों का उल्लेख है किन्तु सर्वत्र इनके समन्वय पर बल दिया गया है, जिससे लोक मे न तो प्रवृत्ति प्रधान सम्प्रदायों का अनर्थ ही विस्तार पा सके और न निवृत्तिमार्गियों की अकर्मण्यता ही। अतः

'न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।
गीता, 3/4

कह कर–

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।
गीता, 3/19

के माध्यम से एक ऐसे सिद्धान्त की प्रस्थापना हुई, जिसे 'ज्ञानकर्मसमुच्चय' कह सकते हैं। वस्तुतः इसी आदर्श के अनुसार जीवन–यापन से लोक का कल्याण सम्भव हो सका था क्योंकि ज्ञानपूर्वक अथवा लोकसमर्पणपूर्वक किया गया कर्म परमतत्त्व की प्राप्ति का साधन होता है। वस्तुतः महाभारत में ऐसे 'दर्शन' की प्रस्थिति प्राप्त होती है, जो लोककल्याण की सरणि का अनुकरण करता है और जिसे जीवन में उतारने के लिए कर्त्तव्यक्षेत्र में उतरने की आवश्यकता है

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"
गीता, 2/47

पुनः मानवगत असामर्थ्य, और हृदयदौर्बल्य को कर्त्तव्य पथ का बाधक घोषित करने तथा नव चेतना और प्राण का संचार करने वाली दार्शनिक प्रवृत्ति भी महाभारत का ही एक अंश है–

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।"
गीता, 2/3

जिसमें निश्चय ही कठोपनिषद् के **'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'** की आत्मा निहित है। ऐसे दर्शन से अभिन्नता स्थापित करने के लिए समस्त जगत् के प्राणियों में प्रभु को तथा प्रभु में प्राणियों को समझकर आचरण करना मात्र पर्याप्त है।[5] कृष्ण के 'मानवीकृत ईश्वर' तथा 'ईश्वरीभूत मानव' होने का यही तात्पर्य है और इसमें रहस्य है 'लोकसंग्रह'[6] ।

महाभारत सदा से धर्मशास्त्र के रूप में गृहीत होता आया है। वस्तुतः वह है भी धर्म का ही प्रतिपादक ग्रन्थ; किन्तु महर्षि वेदव्यास ने अध्यात्मशास्त्र के सिद्धान्तों का सारांश भी इस ग्रन्थरत्न में इतनी सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया है कि यह वास्तव में धर्म तथा कर्म का विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है। व्यास कर्मवादी आचार्य हैं। कर्म से पराङ्मुख मानव, मानव की पदवी से सदा वंचित रहता है

'प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः।'

मानवजीवन की सत्कृतकार्यता हस्तसंचालन में ही तो है। हाथ रहते हुए भी हाथ पर हाथ रखकर जीवन व्यतीत करना पशुत्व का व्यंजक चिह्न है। इसमें मानव की सिद्धार्थता नहीं है

अहो सिद्धार्थता तेषां सन्तीह पाणयः।
अतीव स्पृहये येषां सन्तीह पाणयः।।
न पाणिलाभादधिको लाभः कश्चन विद्यते।
शान्ति0, 180/11,12

ध्यातव्य है कि महाभारत में कर्म के साथ ही पुनर्जन्म का उल्लेख भी प्राप्त होता है। वस्तुतः इस ग्रन्थरत्न में कर्म और पुनर्जन्म का अविनाभाव सम्बन्ध बताया गया है, जिसके अनुसार मनुष्य को उसके कर्म के अनुरूप ही दूसरा जन्म मिलता है। कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने प्रायः समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों का ध्यान आकृष्ट किया है, फलतः इसकी लोककल्याणकारिता सिद्ध होती है

"तिस्रो वै गतयो राजन् परिदृष्टाः स्वकर्मभिः।
मानुष्यं स्वर्गवासश्च तिर्यग्योनिश्च तत्त्रिधा।।"
आरण्यक, 178/9

कर्म कर्ता को किसी भी अवस्था में नहीं त्याग सकता यतः

शयानं चानुशयति तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम्।।
यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत्फलमश्नुते।।
स्त्रीपर्व, 2/22,23

महाभारत में कर्म के 'अक्षय्य' भाव तथा तदनुसार शुभ–अशुभ योनियों में जन्म का उल्लेख प्राप्त होता है

पुण्यां योनिं पुण्यकृतो व्रजन्ति
पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।
कीटाः पतंगाश्च भवन्ति पापाः
न मे विवक्षास्ति महानुभाव।

चतुष्पदा द्विपदा षट्पदाश्च.....। आदि0, 85/19,20

उल्लेख्य है कि कर्मानुसार जन्म तथा सुख–दुःख की प्राप्ति के माध्यम से महाभारत में समष्टि के लिए एक गुह्य सन्देश है, जो भविष्य में आत्मनिर्माण की भावना को पुष्ट करता है, तथा अन्य के प्रति नकारात्मक भावों को जाग्रत होने से रोकता है। अन्य दीन मानवों अथवा प्राणियों के प्रति भी यह विचारणा कर परमकरुणा का उद्भव होता है कि ज्ञात नहीं भविष्य में स्वयं की क्या दशा हो। अतः स्वयं की करुणा तथा कृपा की आशा से दूसरों के प्रति दयार्द्र बनने की प्रेरणा देने में कर्म तथा पुनर्जन्म का सैद्धान्तिक विश्वास महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

जहां इस असार संसार में अज्ञात कारणों से किसी अप्रत्याशित घटना के संकेत मिलते हैं, वहीं लक्ष प्रयासों से भी कार्य सिद्ध न होने के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इनका समाधान भारतीय मनीषियों तथा दार्शनिकों ने दैव, नियति, भाग्य आदि समानार्थक तत्त्वों से किया है, 'काल' की महिमा का प्रतिफल बताया है। समकालिक विद्वान् इसे 'चान्स' (CHANCE) कहते हैं।

वस्तुतः यदि कार्यकारण का सिद्धान्त पूर्णतया सफल होता तो ऐसे तत्त्वों की आवश्यकता न होती किन्तु सत्प्रयासों का प्रतिफल नकारात्मक हो, मतिमान् सज्जनों के कर्म निष्फल हों तथा धूर्त व कामीजनों की समस्त इच्छाएं पूर्ण होने लगें[7] तब विधि के विधान को शिरोधार्य करने में ही कल्याण निहित स्वीकार किया गया। यही कारण है कि द्वैपायन व्याास ने इस सिद्धान्त को **'तस्मादिदं लोकहिताय गुह्यम्'**[8] कहकर दैववाद के रहस्य को उद्घाटित किया। महाभारत में अन्यान्य उपदेशों के माध्यम से तथा

'दिष्टं बलीय इतिमन्यमानो न संज्वरेन्नातिहृष्येत कदाचित्।'
(आदि0, 84/8)

तथा

"दिष्टमेतत् पुरा चैव नात्र शोचितुमर्हसि।
न चैव शक्यं सयन्तुम्..... ।।" भीष्म, 2/14

इत्यादि वाक्यों से लोक को सान्त्वना देने की चेष्टा की गयी है, साथ ही भाग्यवादिता को रेखांकित भी किया गया है।

उक्त सन्दर्भों के अतिरिक्त महाभारत में काल की महत्ता को भी प्रकाशित किया गया है। काल के चक्र से कोई बच नहीं सकता। काल की महिमा अपरिमेय है, वह कभी बलवान् बनता है तो कभी दुर्बल। इसी चक्र के भीतर यह समग्र विश्व अपनी सत्ता धारण किए हुए है। वह देवनिर्मित मार्ग है जिसे लाख चेष्टा करने पर भी कोई अन्तरित नहीं कर सकता । मानव जीवन का श्रेयस्कर मार्ग है– धर्माश्रयण के माध्यम से आत्मविजय करना। यदि मनुष्य सच्चे सुख का अभिलाषी है तो उसका परम कर्त्तव्य धर्म का सेवन ही है।

निष्कर्ष

महाभारतकार ने दर्शन तथा अध्यात्म की सूक्ष्मताओं में न पड़कर सुखद तथा नियमित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देने पर आग्रह किया है, जो निश्चय ही कल्याणपरक विचारणा है। मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रियनिग्रह से ही होता है।[9] मनुष्य इन्द्रियों का दास बनकर पशुभाव को प्राप्त होता है और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर जीवन को सफल बनाने में समर्थ होता है। व्यास जी की सारगर्भित उक्ति है कि वेद का उपनिषद् अर्थात् रहस्य है–सत्य। सत्य का भी उपनिषद् है दम और इसी दम अर्थात् इन्द्रिय दमन का रहस्य है मोक्ष। समग्र अध्यात्मशास्त्र अथवा दर्शन का यही सारतत्त्व है

"वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषद् मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्।।"
शान्ति0, 299/13

निश्चय ही दर्शन की विविध प्रवृत्तियों तथा अध्यात्म, धर्म और नीति की विशद विवेचना ने महाभारत को भारतीय धर्म तथा संस्कृति का 'विश्वकोष' बनाने में कुछ उठा नहीं रखा है।

'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्'[10]का उद्घोष करने वाला यह महनीय ग्रन्थ अध्यात्म के चरम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति का सन्देश भी देता है। यह सम्पूर्ण कृति उपनिषदों और महान् दर्शनों की विचारधारा और व्यावहारिक जीवन की एक काव्यमय अभिव्यक्ति है, जो अपनी ओजस्विता और पूर्णता में अद्वितीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्–आरण्यक, 203/45
2. शान्ति0, 39/33,39
3. आरण्यक 2/14, गीता0, 3/3
4. शान्ति0, 322/24
5. गीता0, 6/30,32
6. गीता0, 3/22–24
7. स्त्रीपर्व, 8/18,28
8. शान्ति0 161/46
9. आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्। उद्योग0, 63/17
10. शान्ति0, 180/12

सहायक ग्रन्थ

1. महाभारत मूल, गीताप्रेस, गोरखपुर
2. पाण्डेय, संगमलाल (1997), भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
3. सिन्हा, प्रो0 एच0पी0 (1995), भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
4. उपाध्याय, बलदेव (1987), संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी